हरीश भादानी की कविता में एक अन्तःस्फूर्त लय होती है इसलिए वे मानते हैं कि गीत और कविता के अन्तर का आधार शिल्प पार्थक्य ही हो सकता है—अनुभूति और कथ्य नहीं। लयात्मकता गीत और कविता दोनों का गुण है।

हरीश भादानी ने गीत भी लिखे हैं किन्तु उनके लिए गीत काल्पनिक स्वरालाप नहीं है। उसमें जीवन की जटिलताओं और विषमताओं का, दुहरेपन को स्वीकार न कर पाने की विवशता का, प्रतिकूलताओं से उपजते दुःख का और अनुकूलताओं के लिए अभिलाषित सुख का राग भी समाहित है। इस संग्रह की कविताओं का इस दृष्टि से अलग

उजली नज़र की सुई

उजली नज़र की सुई

हरीश भादानी

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

ISBN 81—7056—025—X

मूल्य : पैंतीस रुपये

प्रकाशक
पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003

संस्करण : 1987

मुद्रक : शांति मुद्रणालय, दिल्ली-32

UJALI NAZAR KI SUI
By Harish Bhadani Rs. 35.00

बल्ब की
रोशनी के लिए !

अपनी ओर से

शब्दों और उनके अर्थों की खोज का एक दशक। चौराहे-दुराहे सामने से गुजर गए हैं और अब दूर तक सीधी सड़क खिंची हुई है। दोनों ओर के किनारों पर गड़े पत्थर देख रहा हूं। जितनी दूर देख सकता हू—मुझसे आगे भीड़ है, हजार-हजार पांवों के नीचे से सरकती हुई सड़क गुम तक पहुंच रही है। मेरे पीछे भी एक भीड़ है जिसकी आहटें और आवाजें मेरी पीठ और मेरे कानों से टकरा रही हैं—मैं कुछ और आगे फिसल जाता हू।

लगता है, मैं आगे वाली भीड़ से जुड़ गया हू, उसकी एक इकाई बन गया हूं। अपने में अकेलेपन का भार ढोते हुए इस भीड़ के साथ-साथ चलते रहने के मोह से बंधा रहना चाहता हू। इससे दूरी और अलगाव की कल्पना तक करने का साहस मुझमें नहीं। इससे कसकर इसलिए भी जुड़ा रहना चाहता हूं कि इकाईपन का अहसास तक समाप्त हो जाए। सम्भवतः यही मेरी जिजीविषा है जो मुझे अधूरे गीतों में सपन की गलियों में यादों की हंसिनियां दिखाती हुई, शब्द संयोजन के जैवी-धर्म का निर्वाह कराती हुई 'सुलगते पिण्ड' और 'उजली नज़र की सुई' तक ले आई है।

एक दशक की काव्य-यात्रा में अध्यात्म की अफीम से भीगी धरती के अतीत के भाटपन के संस्कार चौराहों-दुराहों की तरह मुझसे बहुत पीछे छूट गए हैं, वे सब शब्दों-अर्थों-सम्बन्धों की खोज का सूत्र मेरे हाथ में थमाकर गुबार में समा गए हैं। मेरी हवा में कई-कई बार उनकी गंध भर आती है। उसी तरह के लोग और स्थितियां, अपनी-अपनी आदतें और चेहरे लिये मेरी और मेरे बाद की पीढ़ी से चिपक कर जीने का उपक्रम करती रहती हैं।

ऐसी ही वैयक्तिक पृष्ठभूमि में जुड़ा-जुड़ा मैं कविता के शब्दों को खोजता रहा हू। इस खोज में सामाजिक प्रतिकूलताओं में लड़ते रहने का आक्रोश और यदा-कदा की थकन भी रहती है तो वैयक्तिक व्यामोह भी, किन्तु जीने के लिए मिल रहे यथार्थ का सुलगता हुआ रंग, उसकी आंच, उसका आकर्षण मुझे व्यामोहों के भावोन्वेष से खींचता रहा है, तपाता रहा है, निकटतम परिवेश की स्थितिजन्य सापेक्षता में जीने के तकाजे करता रहा है और मेरी सम्पूर्ण चेतना पर इन तकाजों के हल्के-गहरे दाग लगे हैं, जिन्हें उजली नज़र की सुई ने गहरे तक बींधा है।

हो रही उसकी नजर की सुई से चुभने से हुई पीड़ा को चाहिये, जिन्दगी,
और कुहराम मन की भीतरी तहों को कुरेदने और आग लगाने के निरन्तर प्रयासों
की कविता से जोड़ दिया है। 1960 के बाद के मेरे शब्द-प्रयोग उनकी हरकतों
के परिणाम हैं। '60 से पहले की रचनाएं वैयक्तिक पीड़ाओं की अभिव्यक्ति हैं।
उनमें स्मृतियों के साक्षात्कार की आतुरता है, गाने में बने एक चेहरे की प्रतीक्षा
है, प्रतीक्षा की निरन्तरता से उपजी वेदना है, किन्तु इनकी भी धरती और घुर
पर नजर रही है, उड़ानों के बाद भी वे नगर के गलियों से आ रही आवाजों को
होलियों में बंधे रहे हैं। ऊपरापन देखने की अनुमति आंखों के सामने से घूर के
और सपना पर आसान नहीं हो पाया, गानों की उसका उतार फिर हुए जीवन
के कठोर विनाशों को भला कैसे भुलाया गया। '60 से पहले की रचनाओं को
कई अनुभूतियों के साथ इसने जोड़ा है कि '60 के आसपास के परिवर्तित
ग्रहण स्तर की स्वाभाविकता को छलिकता और भावात्मकता की चोटों बची
संवेदना और शिल्प स्वीकार नहीं है। स्वाभाविक अभिव्यक्ति में घुली-मिली मन
के बाद ही नवीन-योजना और परिपक्वता मात्र प्रयास है, एक नकारात्मक है और
जिनमें अनुभूति का सहज रूप गठित होता है।

जबकि आज का व्यक्ति अपने संवेदन के असली चेहरे के साथ प्रस्तुत होना
चाहता है। इसी रूप में सारी दुनिया को देखना चाहता है। ना वह अतीत ढोना
चाहता है और न भविष्यवाद की आधारहीन छलांगें ही भरना चाहता है।
वह अतीत की रोशनी में वर्तमान का अंतर देखता हुआ अपनी सम्पूर्ण सजगता
के साथ भविष्य पढ़ने में लगा है। '60 से पहले की रचनाओं को इसमें जोड़ने
की सफाई देते हुए कि—ये रचनाएं सपनों के अंतर्मुखी स्वरों को अनसुना करना
सीखती हुईं; आज सड़क, फुटपाथ, चिमनियों से छनकर आती भारी और अहीरन
की हल्की-मोटी आवाजों में जीने की अभ्यस्त हो रही हैं। और, यह भी कि
इन रचनाओं की चेतना ने अपने युग की धड़कनों को समझते और उनमें जीते हुए
समस्त जड़ताओं से भले वे भावनाओं की हों, संवेदन की हों; टकराते रहने की
प्रक्रिया को और गतिशील किया है।

ये कविताएं हैं जिन्हें मैं गा लेता हूं। गेयता कवि की अतिरिक्त विशेषता
हो सकती है पर काव्य-गुण की श्रेष्ठता का मानदंड नहीं हो सकती। संगीत-
तोड़ों का शिल्प-चातुर्य काव्य को प्रेम-विरह की संकीर्ण सीमाओं में गीत की संज्ञा
से रूढ़ बनाता रहा है—यह गीत स्वर-जीवियों की पकड़ में इस तरह गुंथता-
बंधता रहा है कि अरूपात्मक चित्रों-बिम्बों में जड़ी निरीह भावुकता के अतिरिक्त
पाठक इसका कोई दूसरा अर्थ नहीं समझ सका। लेकिन आज का व्यक्ति अपने
यथार्थ से रागात्मक तादात्म्य करने में लगा है, यही उसका संवेदन है और इसी
संवेदन ने अपनी सीमाओं को कथात्मक व्यापकता दी है, अनुभूतियों को सहज

निम्न दे दिया है और युग के आवश्यक विवेक से जो उसकी जीवन-प्रक्रिया का अंग बन गया है, अनुप्राणित किया है।

ऐसे आज के गीत में धुएं भरे आकाश के नीचे हो रही सभी हरकतें हैं — टाट से ढके घरों में अंगीठी के उजाले के साथ खेलता हुआ प्यार है, सीढ़ियां हैं, भागती हुई भीड़ है, प्रतीक्षा है, आकुलता है, पीड़ा है, सभी कुछ तो है—फिर इस अनुभूत अभिव्यक्ति के बीच नव गीत, पुराने गीत, की दीवार किस तरह खड़ी की जा जा सकती है ? आज के गीत और आज की कविता का कथ्यात्मक और शिल्पगत अन्तर समाप्त हो चुका है। मूल रूप से वह काव्य है, पढ़ने-सुनने में मिलती लय के आधार पर भले ही हम गीत कह दें। किसी रचना को मन की विशेष स्थिति या शुष्क बौद्धिकता से परे की भावाभिव्यक्ति के आधार पर गीत-नवगीत के नाम से बांटना अतीत के रूढ़ गीत से जुड़े रहने का मोह ही होगा, जबकि बदलते हुए संवेदन की अनुभूतियों को काव्याभिव्यक्ति की संज्ञा से स्वीकारना युग-जीवन की सहजता से जुड़ा रहना है।

'उजली नजर की सुई' का यह दृश्य-रूप मेरे सभी अपनों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम है, मैंने लिखा भर है। इन सबसे जुड़ा हुआ जीवन जी रहा हूं, फिर आभार के शब्द कैसे खोज सकता हूं ? अपनों की भीड़ के बीच की यह उजली नज़र की सुई मुझे देखती रहे, मुझमें खुभती रहे और इसके माध्यम से मैं दूरियों के सिलसिले में जुड़ता चलूं तो लगी-लगती और लगने वाली सभी खरोंचों के बाद भी मुझे अपनी जिजीविषा का सार्थक्य लगेगा।

यह…'सुई' विज्ञ पाठकों को खुभे, छुए और छूने-खुभने से बनने विचार-आक्रोश-खीज, स्नेह मुझ तक पहुंचे तो मैं उन्हें अपनी शब्दों-अर्थों-सम्बन्धों की खोज का सहयोगी ही मानूंगा।

—हरीश भादानी

संकेत

मैंने नहीं कल ने बुलाया है	13
यह कौन सा शहर है	14
शहर सो गया है	15
कथा बोलें दुखते मन से	17
दुखता बहुत है मन !	18
बरफ जम गई है	19
कुछ हुआ है वहीं	20
ऐसे सांस जिया करती है	21
किससे बात करे एकाकी मन	22
कब तक और जिया जाएगा ऐसे	23
बोलो कैसे प्यास बुझाएं	24
हो गया कुछ कहीं देखते-देखते	25
संकल्पों को और तराशें	26
दो चार नहीं तो	27
सीमाएं मत पूछो	28
उठो, आवाज लगी है	29
आंखों में सूरज आंजेगी	30
एक अक्षर जिंदगी तेरे लिए	31
यह धरती हमारे लिए	32
गीत से !	33
इतना दे दो !	34
अभी-अभी जन्मी आवाजें !	35
थक न जाए कहीं	37
उतरो जो चाह अभी	38
अब उतरो तुम	40
सड़क रह गई अकेली	42
और तुम याद आईं	43
सड़क बीच चलने वालों से	44
थाली भर धूप लिए बैठी अहीरन	46
प्यास सीमाहीन सागर	47

यहां ऐसे ही पीर पली 48
सांझ जैसे उतरी ! 49
आ क्षितिजों की दूरी भर लें 50
जाग जाने की घड़ी है 51
तुम घुटन देते रहे हो 52
और कितना दर्द को विस्तार दू 54
टीस आया दर्द आधी रात मे 55
अभी दर्द की आख लगी है 56
ओ श्यामा पीड़ाओ 57
चाहे जिसे पुकार ले तू··· 59
मैं भी तुझे पुकार लू 60
तू भी सुन ले, मैं भी सुन लू 62
सात स्वरों में बोल··· 63
क्षण-क्षण की छैनी से··· 64
एक-एक क्षण जिया गया है 65
ऐसे तट हैं क्यों इन्कारें 66
तभी-तभी मन दुख जाता है 67
रहीं अछूती सभी मटकियां 68
सभी सुख दूर से गुजरें 70
हमको मिली है उम्र 72
मंजिल को बांधो मत 74
वैसे तो हर छोर हमारा संगम है 76
उम्र ढलती जा रही है दर्द की 78
पीर कुछ ऐसी बरसी सारी रात 80
सुधियां साथ निभाएंगी 82
फेरो बंधी हुई सुधियों को 84
ओ यादों में घिरे घिरे मन 86
धो लिए हमने सारे पाप 87
मांगो की अंगुली थामे जो 88
तेरी मेरी जिन्दगी का गीत एक है 90
मेरा साथ दुलार का ! 92
ऐसे तुझे पुकार दू ! 93
[illegible]ना है तो चल··· 95
[illegible] किसी एक किसी 96
[illegible] एक [illegible] 97
[illegible] ! [illegible] ! 98

मैंने नही वक्त ने बुलाया है !

ग्रामोफ़ोनियों की छतें
आबनूसी किवाड़े घरों पर
आदमी आदमी में दीवार है
तुम्हें छैनियां लेकर बुलाया है !

सीटियों से सांस भर कर भागते
बाजार, मीलों दफ़्तरों को
रात के मुर्दे
देखती ठंडी पुतलियां
आदमी अजनबी आदमी के लिए
तुम्हें मन खोलकर मिलने बुलाया है !

वरक़ की रोशनी सेफ़ में बंद है
सिर्फ़ परछाईं उतरती है बड़े फुटपाथ पर
जिन्दगी की जिल्द के
ऐसे सफ़े तो पढ़ लिए
तुम्हें अगला सफ़ा पढ़ने बुलाया है !

मैंने नही वक्त ने बुलाया है !

यह कौन सा शहर है ?

रोशनी रोकते हैं
ऊंचे उठे ये मकान
बांधती हैं हवाएं दूर तक तंग गलियां
जो देखती है यहां
वह कौन-सी नज़र है ?

बैठते हैं लोग सब
लेकर अंधेरी छांह
घुटन के फोहे लगाकर सेंकते अपनी थकन
जो घूपती है यहां
वह कौन-सी दोपहर है ?

आहटें भरम जातीं
तख़्तियां देखकर
लौट जातीं पुकारें टकट कर दीवार से
जो सांझती है यहां
वह कौन सी उमर है ?

यह कौन सा शहर है ?

शहर सो गया है !

एक तीखा-सा
बजता हुआ सायरन
उसको आकाश-पाताल देता गया
और सोने बिना
साथ भगता हुआ सूर्य सरका अभी
आदमी पर आदम का
दाग भर रह गया है !
शहर सो गया है !

रची आंख ने दोपहर
गांठ मांडी
खिड़कियों-कोठियों
घर के आंगने
पसर कर जगह से निकला
धुआं सो गया है !
शहर सो गया है !

बैठा हुआ था बाजार में जो
अभी शोर था गहरी
उसे मौन के जंगलों में
सहमा हुआ सो गया है !
शहर सो गया है !

इन रोशनी के
सड़क के किनारे

लटका दिए सूलियों पर
अंधेरी अंगुलियों में
स्वर रुंध गया है !
शहर सो गया है !

आग-पानी
धुआं-धूप की हद पार
पसरा रहा वो,
ओढ़े थकन की फटी सी रजाई
छाती में घुटने
धंसा सो गया है !
शहर सो गया है !

क्या बोलें दुखते मन से ?

सुबह-सुबह आकर चुभती है
पिनें धूप की
क्या बोलें दुखते मन से ?

सौ-सौ मुंह उगला करती हैं
धुआं चिमनियां
क्या देखें घर आंगन से ?

जली-जली रहती हैं
सड़कें कोलतार की
क्या बचलें इस आगुन से ?

डुबो लिया करता
कोलाहल सम्बंधों को
क्या खोजें अपनेपन से ?

सुई सी दिया करती
सन्ध्या की अंधियारे से
क्या बोले सीधे तन से ?

क्या बोले दुखते मन से ?

दुखता वहुत है मन !

वेठती वाजार में
जव हर सुवह
ले सोन जूही तन !

मोलती है भोड़
जव संकल्प को
हर सांस हर धड़कन !

एक टुकड़ी छांह की
जव दागती
फैला हुआ दर्पण !

पोंछती हारी उमर
हल्दी धुला
रेखा हुआ आंगन !

दुखता वहुत है मन !

बरफ जम गई है

बंद दरवाजे लिए
झांके है आदमी झरोखों मे
बरफ जम गई है !

सड़क, फुटपाथ, छजवालों, गली
बल्ब की टोपियों पर
सुफेदी ठर गई है !

रेस्तरां बार में
सर्दा गई चेतना
प्यालियों-गिलासों मे गर्मती है !

खामोशियों बीच
सुलगी बड़ी देर तक
यों अंगीठी भी मजला गई है !

बरफ जम गई है !

कुछ हुआ है कहीं !
एक छत टूट कर आ गिरी
खामोशियां चीखने लग गईं
सारा शहर मुच गया
देखते-देखते
कुछ हुआ है कहीं !

आंख की ड्योढ़ियां जड़ गईं
थक-थक गईं धड़कनें-हरकतें
काला कफन आ ढरा
देखते-देखते
कुछ हुआ है कहीं !

हूंकती चोंच चोटें गई
ठंडी शिला में दरारें पड़ीं
आकाश ही फट गया
देखते-देखते
कुछ हुआ है कहीं !

ऐसे सांस जिया करती है !

गगन चढ़े
कलमपे मुखौटों को सुलगाकर
जैसे सुबह दिखा करती है !

निर्वसना धरती के
भूरे-भूरे तन को
जैसे किरण ढंका करती है !

धूप जली टूटी की छत पर
टिकी दिशा को
जैसे हवा छुआ करती है !

ऐसे सांस जिया करती है !

किससे बात करे एकाकी मन ?

इतने बड़े गगन के आंगन
जड़े घटाओं के दरवाजे
और पहर के भारी हाथों
नहीं हवा की सांकल बाजे
पहरा रात करे अंधियारे तन !

जितनी दिखीं दिशाएं हमको
भेजे सांसों के चरवाहे
राग नहीं मिल पाई कोई
स्वर किस दूरी को निर्वाहे
गुमसुम साथ फिरे दर्दीये मन !

किससे बात करे एकाकी मन ?

कब तक और जिया जाएगा ऐसे ?

तन मन पर तो
संशय का आकाश पड़ा है
सब कुछ धुंधलाया दिखता है
थामे हाथ मौन की लाठी
कब तक और चला जाएगा ऐसे ?

घेरे हुए खड़े खंडहर
बेरूप विगत के
हवा निगल जाती आवाजें
चारों ओर बरफ की घाटी
कब तक और रहा जाएगा ऐसे ?

आ, अब सांसों की ईंधन अगियारी
जड़ झुलसे, अवरोध दरारें
पूरब की देहरी पर अनआगत को
अघ का अर्घ दिया जाएगा जैसे !

तब तक और जिया जाएगा वैसे !

बोलो, कैसे प्यास बुझाएं ?

सागर जैसा एकाकीपन
नीले जल सा खारा तन-मन
रीती-ठरी हवाओं जैसे
कब तक अपनी सांस दुखाएं ?

दोपहरी जैसी पीड़ाएं
अपनेपन की मृगतृष्णाएं
थके-थके से मन हिरना को
किस दूरी की आस बंधाएं ?

बोलो, कैसे प्यास बुझाएं ?

हो गया कुछ कहीं देखते-देखते ··

एक छत टूट कर आ गिरी
ख़ामोशियां चीखने लग गईं
सारा शहर मुच गया
देखते-देखते···

आंख की ड्योढ़ियां जड़ गईं
थक गईं हरकतें-धड़कनें
ठंडा कफ़न ठर गया
देखते-देखते···

चोंच ने हूक भर चोट दी
काली शिला दरदरा कर पड़ी
आकाश ही फट गया
देखते-देखते···

हो गया कुछ कहीं देखते-देखते···

संकल्पों को और तरासें !

गाफ अभी जो की थी हमने
उगी जमीं पर
उठ आई हैं कई फ़सोलें
इन्हें तोड़ना है फिर
संकल्पों को और तरासें !

हमने जो बीजा
सारा हरियाया
हिलकी-हिलकी उसी हंसी पर
पाला पसर गया है
धूप हमें ही देनी है फिर
संकल्पों को और तरासें !

अभी-अभी जन्मी जो पीढ़ी
हम जो कुछ भी लिखे जा रहे
उसका एक-एक अक्षर बांचेगी
प्रश्न कई पूछेगी हम से
उत्तर सभी हमें देने फिर

संकल्पों को और तरासें !

दो चार नहीं तो
सिर्फ एक अंगारा रख दें !

ठंडा पानी भरा नसों में
जड़-सी देह
पसरी हुई हथेली पर
दो चार नहीं तो
सिर्फ एक अंगारा रख दें !

सूखी सांसों की बारूद बिछी है
मन के तलपट पर
दो चार नहीं तो
सिर्फ एक अंगारा रख दें !

फेंक रहे बीमार हवाएं
उगे गली सड़क चौराहे
ऐसे सब ढूहों पर

दो चार नहीं तो
सिर्फ एक अंगारा रख दें !

सीमाएं मत पूछो !

दो-दो पग आंके ही जाएं
हम भूरी-भूरी माटी पर
दो-दो आवाजें देते ही जाएं
धुंधआई घाटी में
कहां-कहां टकरा गूंजेंगी
सीमाएं मत पूछो !

दो-दो हाथ जड़ों से काटें
बीच-बीच में ऊंचाई तक उठी शिलाएं
कितनी सांसें चुक जाएंगी
सीमाएं मत पूछो !

धोएं दो-दो हाथ
अंधेरा जो भी दाग़ गया है गहरा-गहरा
कितनी धूप खरचनी होगी

सीमाएं, मत पूछो !

उठो, आवाज लगी है !

कुहरे के किवाड़
जड़ गई सांझ ड्योढ़ी पर
इन्हें रोशनी के हाथों से तोड़
उठो, आवाज लगी है !

सारी की सारी धरती
कोरी, अनचीन्ही
पांव-पांव रख आंकें
उठो, आवाज लगी है !

बूढ़े अतीत के चौराहों के पार
उजाले
अभी-अभी घोली स्याही से आखर

उठो, आवाज लगी है !

आंखों में सूरज आंजेगी !

उलझन की घाटी में वंदी
मन के पौरुष !
अपनी उजियारी पांखों से
तमसा की सांकल काटेगी !

मन्वंतर से
अनबोली ही पड़ी दिशाओ !
केवल एक लगन की आहट
शिखर-शिखर जा आवाजेगी !

खुली पड़ी
अनलिखी समय की इस पोथी पर
सांस-सांस आखर आंकेगी !

आंखों में सूरज आंजेगी !

एक अक्षर जिन्दगी तेरे लिए !

रोशनाई शाम की
गहरी बहुत गहरी रहे
लेखनी संकल्प की
लिखती रहे लिखती चले
आज का कागज
नए कल के लिए !

एक उजली नजर की सुई
आदमी आदमी के फटे मन सिये
इस तरह गूथ दे
कल जाए
नए कल के लिए !

आग धरती से उठे
घाटियां घूमती पर्वतों को छुए
एक घन ईंधन
तुम्हारे साथ मेरी भी
नए कल के लिए !

एक अक्षर जिन्दगी तेरे लिए !

यह धरती हमारे लिए !

सांस ने सांस से
एक हो तोड़ दी
यह अंधेरी दिशा
एक तेरे लिए
और मेरे लिए !

फूटे क्षितिज से
रिसी सुर्खियों में
आंगन कंगूरे गली घोल दी
एक तेरे लिए
और मेरे लिए !

धूप की झील में
तैरती हरकतें
सामने रास्ते का शिखर
एक तेरे लिए
और मेरे लिए !

यह धरती हमारे लिए !

गीत मे !

ड्योढ़ियां गूंजती हैं
छतों आंगनों का शहर गूंजता
गीत मे !

आंख डबडबाते देखे क्षितिज
धूप पहने हुई
हर सड़क गूंजती
गीत मे !

ये रुनझुन हवा
ये टनक टनती घंटियां
एक दुनिया सजाते हुई चूड़ियां गूंजती

इतना दे दो !

घुटते-बुजते सांझ
ठर गया गुन क्षणों का
पांवों पर सूजन चढ़ आई
      और हवा से टूट-टूट कर
      सन्नाटा घुम गया तहों में
      तन दुखता है मन दुखता है
ऐसी है बीमार रात अंधियारे से
तुम दवा उजाले की दे दो !
                इतना दे दो !

सिले हुए होठों के भीतर
आवाजों का भरम घुटा करता है
थक जातीं मुर्दा आकाश देखती आंखें
      पलकों पर धीरे से
      जहर फिरा जातीं तारों की सुइयां
      क्या बोलें कैसे बोलें
ऐसी पीड़ाएं रात भोगती
गुजर न जाए पूरी एक उमर बेहोशी में
तुम दवा जागरण की दे दो !

      इतना दे दो !

अभी-अभी जन्मी आवाज़ें !

शब्द की शकल
शकल का अर्थ
अर्थ का बोल मांगती
अभी-अभी जन्मी आवाज़ें !

अभी बढ़ा है
दुविधाओं का भ्रूण
हटा है सन्नाटे का भार
खुली आँखें
आवाज़ मांगती हैं
दिशा की शोध मांगती
अभी-अभी जन्मी आवाज़ें !

घोली उजियारी
कल्पना कलम मांगती है
कलम से लेख मांगती है
लेख का अर्थ मांगती

अभी-अभी जन्मी आवाज़ !

उतरी जो चाह अभी
पूरवी दुमहले से—

सोने के पांव रखे
चौक छत मुंडेरों पर
पोरों से दस्तक दी
बंद पड़ी ड्योढ़ी पर
निंदियायी पलकों पर
कुनमुनती गलियों
सड़कों-फुटपाथों पर
उठ बैठे जितने सवाल
सब बटोर ले गई मुहल्ले से !

धरती पर आ उतरे
टीन के आकाश नीचे
सांस-सांस पिघलाई
आग की कढ़ाही में
लोहे के सांचों पर
आंख टिका
आंख झपक
संकेतों-संकेतों
आखर ही आखर
ढल रहे धड़ल्ले से !

हीरों के हरियाये खेतों में
हुम-हुम कर हिलके हैं

हाथ-हाथ हांगिये
रीझी सी ठहरी है
दोपहरी मेड़ों पर
हे-हो की आवाज़े
हल्की-सी टिचकोरी
फेर रही बैलों को
धान-धान फूस-फूस
फटके है पल्ले मे !

उतरी जो माह अभी
पूरबी दुमहले मे

अब उतरो तुम !

कसे कुहासे की सीवन को
खोज-खोज कर
फाड़ें-खोलें
न्हाये-धोये क्षण की पोरें
दोनों बांहों को फैला
अंजुरी उलीचो
भर-भरकर आकाश आंख में
किसी क्षितिज से
अब उतरो तुम !

लोहे की दीवारों वाले
शहरों की सड़कों
फुटपाथपुरों को,
गांवों की
पगडंडी के चेहरों को
देख रही है
आहट सुबह-सुबह की
सांस-सांस के
स्वरों-स्वरों का
कोलाहल-कोलाहल
रखने देहरी पर
अब उतरो तुम !

हारे चौराहे

हो गए समर्पित
चलने वाली पांत को,
      छोर न दिख पाए
      दूरी का
      सम्बन्धों की सीख को
अवरोधों के
सारे पत्थर
रखने किसी किनारे पर

अब उतरो तुम !

सड़क रह गई अकेली !

सांकल लगा कर रात को
अलगा गया डरपोक दिन
छू न ले तन को कहीं
अंधेरे की अछूत छाया
दूर मुंडेर-कंगूरों से ही
आंख चुराती गई
कुलीना सांझ सहेली !
सड़क रह गई अकेली !

सिर धुन घाव गिनें फुटपाथ
रोशनी थाम हाथ में
मन का दर्द धुंआता
सुलग न जाए कहीं इसलिए
हांफती सांसों में जा-जा
खुभ जाती बफिल हवा
धूप भर-भर जो खेली !

सड़क रह गई अकेली !

सड़क रह गई अकेली !

सांकल लगा कर रात की
अलगा गया डरपोक दिन
छू न ले तन को कहीं
अंधेरे की अछूत छाया
दूर मुंडेर-कंगूरों से ही
आंख चुराती गई
कुलीना सांझ सहेली !
सड़क रह गई अकेली !

सिर धुन घाव गिनें फुटपाथ
रोशनी थाम हाथ में
मन का दर्द धुंआता
सुलग न जाए कहीं इसलिए
हांफती सांसों में जा-जा
घुस जाती थकित हवा
धूप भर-भर जो झेली !

सड़क रह गई अकेली !

सड़क बीच चलने वालों से
क्या पूछूं ?

किस तरह उठा करती है
सुबह चिमनियों से
ड्योढ़ी-ड्योढ़ी
किस तरह दस्तकें देते हैं
सायरन-सीटियां
क्या पूछूं ?

कब कोलतार को
आंच लगी
किस-किसने पी
किस तरह सियाही
पांवों की तस्वीर बनी
कितनी दूरी के कैनवास पर
क्या पूछूं ?

कैसे गुजरे दिन
टीन शेड की दुनिया का
किस तरह उतरती रात
मौन के आर-पार
किस तरह हांफती भीड़ भागती

वे कौन चले फुटपाथों पर
किस तरह
कतारें टूट गईं
गलियारों पर
उनसे पूछूं !

सड़क बीच चलने वालों से
क्या पूछूं ?

थाली भर धूप लिए बैठी अहीरन !

सिरहाने लोरी सुन
सोये पल जाग गए
अंजुरी भर दूध पिया
बिन बोले भाग गए
उड़ी-उड़ी फूलों की गंध बांधने में मगन !

छांहों की छोड़ गली
सड़कों-चौराहों को
खेतों में हिलक रही
बालों की बांहों को
गूंज-गूंज डोरी से बांधने की लगन !

साथ देख रीझे हैं
सांझ-सी सहेली
चाहों से भर दी है
रात की हथेली
आज लिए आंखों में उजले सगुन !

थाली भर धूप लिए बैठी अहीरन !

प्यास सीमाहीन सागर
अंजुरी भरले कोई !

लहरें टकरातीं पीर की
मौनी किनारों से
झुलसी हुई ये लौटतीं
तपते उतारों से
शेष सुधियां फेन जैसी
आंगने रखले कोई !

दूरियों से दूरियों तक
सिर्फ़ टीसें गूंजती
और बहकी-सी सिहरनें
द्वार-ड्योढ़ी घूमती
सपन तारों से अनींदे
आंख में रखले कोई

आग जागेगी अलगव
रात जो करवट भरे
सांस पी लेगी खरो
भोर जो आहट करे
साध पूरब की किरण-सी
बांह में भरले कोई !
प्यास सीमाहीन सागर
अंजुरी भरले कोई !

यहां ऐसे ही पीर पली !

दूर की उलझी बात लिये
और कोलाहल साथ लिये
अनबन ठान हठीली लहर
बिना न्यौते ही तीर चली !
यहां ऐसे ही पीर पली !

क्षितिज में ऊंचे हाथ किए
गवाही सौ-सौ साथ लिए
सांझ की चूनर, बैरन रात
बिना ओढ़े ही चीर चली !
यहां ऐसे ही पीर पली !

यहां हर मोड़ जुआरी है
समय से होड़ दुधारी है
आशा बांध किरण की सीध
बिना पूछे ही नीड़ चली !
यहां ऐसे ही पीर पली !

सांझ जैसे उतरी !

थमक गए दो बंधे-बंधे से
गति के सूरजमुखी चरण
तृष्णाओं के पाखी लौटे
गुमसुम के झुरमुटी सदन
रहे अनछुए छोर
रात जैसे पसरी !

एकाकीपन फिरे गूंजता
मन के आकाशी आंगन
ठगी-ठगी-सी देखे निंदिया
सपनिल तारों की उलझन
भर-भर आए नयन
हवा जैसे ठहरी !

छेड़ गई खोजी आकुलता
आशाओं के इकतारे
तम के भरम उतार उगा है
सूरज पूरब के द्वारे
उड़ी दिशाओं सांस
धूप जैसे बिखरी !

सांझ जैसे पसरी !

आ क्षितिजों की दूरी भर लें !

वंध्या जैसी मांग-डगर पर
आ कुंकुम के चरण आंक दें
गुमसुम से आकाश-बीच को
आंखों वाली पांख बांध दें
धूप चढ़े चढ़ आने
प्यास बढ़े बढ़ जाने
आ सूरज ढलने से पहले
दसों दिशा सिंदूरी कर लें !

अंधियारी पहरेदारी में
रुनझुन रुनझुन आहट बांधें
अनपढ़ हाथों लिखे हुए से
इन उलझे तारों को बांचें
रात कुढ़े कुढ़ जाने
कुहिर घुले घुल जा
आ सूरज उगने से पहले
अभिलाषिन कस्तूरी धर लें !

आ क्षितिजों की दूरी भर लें !

तुम घुटन देते रहे हो
और हो तो और दो !

एक कड़वी गंध घोली
सुबह की हर सांस में
धूप खीजे छंद बोली
सुगबुगाती आस में
पर चरण तो भीड़ में भी
सीध अपनी ही चले
तुम चुभन देते रहे हो
और हो तो और दो !
तुम घुटन देते रहे हो
और हो तो और दो !

एक विधवा सी उदासी
सांझ को दी बांचने
और कुटनी रात उतरी
साध मन की बांधने
किंतु सूनी बीण पर भी
गीत स्वर गाकर चले
तुम जलन देते रहे हो
और हो तो और दो !
तुम घुटन देते रहे हो
और हो तो और दो !

एक आंधी-सी उठाई

रोक दे जो काफ़िला
अड़ पड़ा पावन डगर में
तोड़ दे जो सिलसिला
किंतु घुन मौसम भरम के
साधनो आगे चली
तुम वचन देते रहे हो
और हो तो और दो !

तुम घुटन देते रहे हो
और हो तो और दो !

और कितना दर्द को विस्तार दूं ?

दे दिया आकाश मन का
बांचले गहराइयां
नाप ले ऊंचाइयां
सीध जो चाहे तो
खोजी, दूंधिया पांखें पसार दूं !

दे दिया माटी घड़ा तन
भार अपना जान ले
आंधियां पहचान ले
वो दूर चुनले तो
छोर पर जाकर उजारा ढार दूं !

सफ़र में दुख जाय पोरें
दोप फिर मेरा नहीं
दोप फिर मुझ पर नहीं
ता-हम भी थके तो
बहानों के दुराहे पर उतार दूं !
और कितना दर्द को विस्तार दूं ?

टीस आया दर्द आधी रात में !

धूप से उलझी-थकी-सी
आंख निंदियाने लगी
दूरियों को खोज लौटी
साध सिरहाने लगी
पर सपन की आसमानी झील पर
हिलक आई याद आधी रात में !

चांद पर कुंडली लगाए
आस अकुलाई फिरी
चांदनी परछाइयों पर
प्यास हठियाई तिरी
पर अबोली ही ढहाने आ गई
बादली की पर्त आधी रात में !

ये अनीदे सांस सारे
और एकाकी पहर
और तारों के बहाने
मौन सब आए उतर.
गूंथ देगी पर स्वराती टहनियां
सुगबुगाता गीत इस परभात में !

टीस आया दर्द आधी रात में !

अभी दर्द की आंख लगी है
धीरे-धीरे बहो हवाओ !

सांस भरी है सुबकी लेती
धूप गई है थपकी देती
कोलाहल न करें राहों में
वन-पाखी से कहो दिशाओ !
अभी दर्द की आंख लगी है !

गोधूली उठ-उठ गहराओ
संध्या पर घुल-घुल छा जाओ
कहीं दिखे ना चांद तीज का
पहर तीसरे तुम रुक जाओ !
अभी दर्द की आंख लगी है !

मौसम अभी बनो मत सावन
बिजरी कौंध जायगी आंगन
रिमझिम घुंघरू कहीं न छनकें
गुमसुम ठहरी रहो घटाओ !

अभी दर्द की आंख लगी है
धीरे-धीरे बहो हवाओ !

ओ, श्यामा पीड़ाओ !
ओ, सुधियां छलनाओ !
तुमको पूरब की दहरी पर
जन्मे स्वर दे दूं
तुम भाषा बांधलो !
परिभाषा जानलो !

ढरक गई हैं ठंडी सतहें
क्षितिजों के प्राचीर पर
सपने जोगी से जा बैठे
नभ-गंगा के तीर पर
और बढ़ेगा बोझ भरम का
दूर झिलमिले तारों से
ओ, भटको तृष्णाओ !
ओ, गुमसुम आशाओ !
तुमको थकती हुई रात का
ढला पहर दे दूं
पहला पल बांच लो !
चहकें पहचान लो !

ओ, श्यामा पीड़ाओ !
ओ, सुधियां छलनाओ !
सांसों का विस्तार
गंध के महके हुए पड़ाव सा
जैसा जिया लिया है सारा

उजली-धूप-उठाव सा
आए मौसम के परिवर्तन
और अभी आने को हैं
ओ, रुकती छायाओ !
ओ, अरुणा रचनाओ !
तुमको जिजीविषाओं वाली
खुली नज़र दे दूं
फिर-फिर कर बांच लो !
फिर अर्थ निकाल लो !

ओ, श्यामा पीड़ाओ !
ओ, सुधियां छलनाओ !

चाहे जिसे पुकार ले तू अगर अकेली है !

संध्या खड़ी मुंडेर पर
पछुवाये स्वर टेर कर
अंधियारे को घेर कर
ये सब अगर परदेशी
आंगन दीप उतार ले तू अगर अकेली है !

देख सितारे और गगन
दुखती-दुखती बहे पवन
घड़ियां सरके बंधे चरण
ये भी लगे अगर परदेशी
कल का सपन संवार ले तू अगर अकेली है !!

टहनी - टहनी बांसुरी
आई ऊषा - नगरी
खिली कमल की पांखुरी
गीत सभी पूरब-परिवेशी
अपने समक्ष पुकार ले तू अगर अकेली है !

चाहे जिसे पुकार ले तू अगर अकेली है !

मैं भी तुझे पुकार लूं !
तू भी मुझे पुकार ले !

संगम की सीमाओं पर
सूनेपन का कोलाहल है
धूपाई दूरी के पथ
सपनों की सरगम घायल है
गर न थकी हों सांसें तो
साधों की खोजी नाव को
मैं भी उधर उतार लूं !
तू भी उधर उतार ले !
मैं भी तुझे पुकार लूं !
तू भी मुझे पुकार ले !

अरमानों पर पहरा है
जीवन की जड़ताओं का
जग सुनने का आदी है
आधी रही कथाओं का
गर निष्ठाएं शेष हों तो
कमजोर इरादों पर
मैं भी शब्द उभार लूं !
तू भी शब्द उभार ले !
मैं भी तुझे पुकार लूं !
तू भी मुझे पुकार ले !

वैसे तो हम दोनों के

पथ का एक विराम है
लेकिन हरइक चौराहा
भरमाने में बदनाम है
फहरे परचम राग का तो
मंजिल के उस छोर पर
मैं भी सीध उभार लूं !
तू भी सीध उभार ले !

मैं भी तुझे पुकार लूं !
तू भी मुझे पुकार ले !

तू भी सुन ले ! मैं भी सुन लूं !

यह सागर जिसका फैलाव
नज़र की सीमाओं से दूर है
निंदियाया इस तरह कि जैसे
वर्षों जागी हुई थकन से चूर है
सागर जिसने
चुभन छुपाली
इतनी गहरी इतनी गहरी
छोर नहीं छू पाई अब तक
खोजी सूरज की दोपहरी
पर अपने तट पर आ-आकर
वह भी कुछ-कुछ बोल रहा है
मौन शिलाओं से टकराकर
मन की गांठें खोल रहा है……

तू भी सुन ले ! मैं भी सुन लूं !

सात सुरों में बोल, मेरे

हर पतझर के [illegible]
जा बासंती वेश में
सिंगारी-सी डोल, मेरे मन की पीर !

जा झीलों के राज में
बदरी के अंदाज में
रिमझिम घूंघट खोल, मेरे मन की पीर !

अपनी-अपनी राह पर
मनभाती हर चाह पर
विरह-मिलन मत तोल, मेरे मन की पीर !

सांसों की सीमाओं पर
मुस्कानों पर आहों पर
जीवन का रस घोल, मेरे मन की पीर !

सात सुरों में बोल, मेरे मन की पीर !

क्षण-क्षण की छैनी से काटो तो जानूं !

पसर गया है घेर शहर को
भरमों का संगमूसा
तीखे-तीखे शब्द सम्हाले
जड़ें सुराखो तो जानूं !

फेंक गया है बरफ छतों से
कोई मूरख मौसम
पहले अपने ही आंगन से
आग उठाओ तो जानूं !

चौराहे पर प्रश्नचिह्न-सी
खड़ी भीड़ को
अर्थभरी आवाज लगा कर
दिशा दिखाओ तो जानूं !

क्षण-क्षण की छैनी से काटो तो जानूं !

एक-एक क्षण जिया गया है !

अभी-अभी डूबे सूरज की
दिन भर की बुनमुनी झील को
सांस-सांस भर पिया गया है !

अभी चुभे अंधियारे विष से
सीत्कारती आवाज़ों को
रात-रात भर सिया गया है !

खोल मौन के बंद किवाड़े
मन के इतने बड़े नगर में
कोलाहल भर लिया गया है !

एक-एक क्षण जिया गया है !

तभी-तभी मन दुख जाता है !

बैठ रात की ऊंची ड्योढ़ी
एकाकीपन का बनजारा
निदियाये क्षण हिलकाता है !

किसी सुबह का अनपढ़ सूरज
सांसों के नन्हे बिरवे से
सौ-सौ हाथ उलझ जाता है !

तभी-तभी मन दुख जाता है !

रहीं अछूती
सभी मटकियां
मन के कुशल कुम्हार की !

साधों की रसमस माटी
फेरी सांसों के चाक पर
क्वांरा रूप उभार दिया
सतरंगी सपने आंक कर
हाट सजाई आहट सुनने
कंगनिया झंकार की
रहीं अछूती
सभी मटकियां
मन के कुशल कुम्हार की !

अलसाई ऊषा छू दे
मुस्का मूंगाये छोर से
महंदी के संकेत लिखे
संध्या पांखुरिया पोर से
चौराहे रखदी बंधने को
बांहों में पनिहार की
रहीं अछूती
सभी मटकियां
मन के कुशल कुम्हार की !

हठी चितेरा प्यासा ही
बैठा है धुन के गांव में

भरी उमर की बाजी पर
विश्वास लगे हैं दाव मे
हार इसी आंगन पंचोली
साधे राग मल्हार को

रहीं अछूती
सभी मटकियां
मन के कुशल कुम्हार की !

सभी सुख दूर से गुजरें
गुजरते ही चले जाएं
मगर पीड़ा उमर भर साथ चलने को उतारू है

हमको सुखों की आंख से तो बांचना आता नहीं
हमको सुखों की साख से तो आंकना आता नहीं
चल रहे हैं हम
अभावों को चढ़ाए सांस की खूंटी
हमको सुखों की लाज से तो झांकना आता नहीं
निहोरे दूर से गुजरें
गुजरते ही चले जाएं
मगर अनबन उमर भर साथ चलने को उतारू है
मगर पीड़ा उमर भर···

हमारा धूप में घर छांह की क्या बात जानें हम
अभी तक तो अकेले ही चले क्या साथ जानें हम
लो पूछ लो हमसे
घुटन की घाटियां कैसी लगीं
मगर नंगा रहा आकाश क्या बरसात जानें हम
बहारें दूर से गुजरें
गुजरती ही चली जाएं
मगर पतझर उमर भर साथ चलने को उतारू है !
मगर पीड़ा उमर भर···

अटारी को धरा से किस तरह आवाज देदें हम
महंदिया चरण को क्यों दूर का अंदाज देदें हम

चले श्मशान की देहरी
वही है साथ की मंज़ा
बरफ के एक बुन को आस्था की आंच क्यों दें हम
हमें अपने सभी बिसरें
बिसरते ही चले जाएं
मगर सुधियां उमर भर साथ चलने को उतारू हैं।

सभी सुख दूर से गुज़रें
गुज़रते ही चले जाएं
मगर पीड़ा उमर भर साथ चलने को उतारू है !

हमको मिली है उम्र
केवल प्यास पीने के लिए
बोल मन
दो बूंद का
अहसान लेकर क्या करें ?

सांस तो इतिहीन राहों की धरोहर है
किसी विस्तार जैसी ही हमारी दृष्टि
दूर सिंदूरी दिशाओं की धरोहर है
हमको मिली है धूप
जीवन ढांप लेने के लिए
बोल तन
फिर छांह का
अहसान लेकर क्या करें ?

साध थामे सांस का आंचल चला करती
विषमता में जनमते गीत के हर छंद में
सुगबुगा सूरजमुखी रागें पला करतीं
हम को मिली है विवशता ही
बांच लेने के लिए
बोल मन
क्षण-अर्थ का
अहसान लेकर क्या करें ?

गीत जड़ता का कभी अर्चन नहीं करते
ये हमारे कुंदनी विश्वास के स्वर

दपर्णों के मोह का बंधन नहीं महते
हमको मिली हैं दूरियां
पहचान लेने के लिए
बोल तन
फिर ठौर का
अहसान लेकर क्या करें ?

हमको मिली है उम्र
केवल प्यास पीने के लिए
बोल मन
दो बूंद का
अहसान लेकर क्या करें ?

मंजिल को बांधो मत !
चलना रुक जाएगा ! जीवन थक जाएगा !

बोलो अठपाखी मलयानिल
कब ठहरी है वातायन में
बोलो कब चपला किरण बंधी
दहरीवाले किस आंगन में
केवल दो पल की
उम्र हुआ करती मनुहारों की
पायल को टोको मत
रुनझुन रुक जाएगी ! सरगम घुट जाएगा !
मंजिल को बांधो मत !
चलना रुक जाएगा ! जीवन थक जाएगा !

बोलो कब सावन की रिमझिम
सहमी धूपाई घाटी में
बोलो बंदी-सा छिपा रहा
कब बीज कौन-सी माटी में
करवट लेना तो आदत है
मौसम की और बहारों की
भरमों को बीजो मत !
उलझन उग आएगी ! संगम मिट जाएगा !
मंजिल को बांधो मत !
चलना रुक जाएगा ! जीवन थक जाएगा !

चलदें सरसोंई सपनों से

धरती की कोरें चमचम दें
रजनीगंधा आशाओं से
क्षितिजों की पोरें रमझम दें
मापी है दिन में सूरज को
रातों में माप सितारों को
दूरी को नापो मत !
राहें बढ़ जाएंगी ! धुंधला बढ़ जाएगा !
मंजिल को बांधो मत !
चलना रुक जाएगा ! जीवन थक जाएगा !

वैसे तो हर छोर हमारा संगम है
फिर भी अंतर है
धरती-आकाश का !

तू उन्मादी छप-छप करती लहरों-सी
मैं मटियाये चिरव्रत मौनी कूल-सा
तू अरुणाई चटकी कली गुलाब-सी
मैं अनछुए सीध से चुभते शूल-सा
वैसे तो हर ओर हमारा परचम है
फिर भी अंतर है
रंगों-आभास का !
वैसे तो हर छोर हमारा संगम है
फिर भी अंतर है
धरती-आकाश का !

तू वन पाखी से बतियाती भोर-सी
मैं धूपाते उठते हुए चढ़ाव-सा
तू लजती अभिलाषिन क्वांरी सांस-सी
मैं तम पर तारों के लिखे जड़ाव-सा
वैसे तो हर ओर हमारा सरगम है
फिर भी अंतर है
पीड़ा-परिहास का !
वैसे तो हर छोर हमारा संगम है
फिर भी अंतर है
धरती-आकाश का !

तू घड़ियों के साथ सरकती याद-सी
मैं अनआगत पल के पहले बोल-सा
तू दूरी से सिहरी-सिहरी आग-सी
मैं गहरे उठते सांसों के तोल-सा
वैसे तो हर मोड़ हमारा अनुपम है
फिर भी अंतर है
सपनों-विश्वास का !
वैसे तो हर छोर हमारा संगम है
फिर भी अंतर है
धरती-आकाश का !

उम्र ढलती जा रही है दर्द की
एक दिन इसका जनाज: जायगा !

यह वियोगिन रात
गहरी और गहरी हो रही
सात्र की संवरी दुल्हन
घूंघट निकाले रो रही
मिलन के स्वर
ढूंढ़ती हारी थकी ठंडी हवा
मौन सपनों के
सितारों की उदासी ढो रही
पल का पुरोहित आंसुओं से
याद का इक मर्सिया लिख जायगा !
उम्र ढलती···

मीत मत कहना
उठी हैं अर्थियां अरमान की
मीत मत कहना
फिरी हैं डोलियां अभियान की
सांस हो भारी रहा है जिंदगी के तौल पर
मीत फिर देना न बोली
गीत के अभिमान की
लिख न पाया प्यार ही जग तो
व्यथा का अर्थ क्या कर पायगा ?
उम्र ढलती···

रह गई हो पीर कोई भी
अजन्मी तो जनमने दो
पिघलने से बचा हो
अहम तो उसको पिघलने दो
ज्यूं-ज्यूं तपा जितना तपा
सोना तभी कुंदन बना
इसलिए ही जल रहे विश्वास को
कुछ और जलने दो
प्यार का मातम मनाऊं किसलिए
मैं जहां चाहूं वहीं मिल जायगा !

उम्र ढलती जा रही है दर्द की
एक दिन इसका जनाज: जायगा !

पीर कुछ ऐसी बरसी सारी रात
भोर कुछ और सुहानी होकर निकली !

बहुत घुली
घुल-घुल गहराई
बदरी विरहा सांस की
उलझ-उलझ पथ भूली गंगा
सपनों के आकाश की
रही तड़पती
बिजरी-सी आधी बात
उषा कुछ और कहानी होकर निकली
पीर कुछ ऐसी बरसी सारी रात…

बहुत झुरी
झुर-झुर कर रोई
मन की आस अभाव में
अनजाने अनगिन तट देखे
आंसू के तेज बहाव में
सूनेपन में कुछ
अपना लगा प्रभात
धूप कुछ और सलोनी होकर निकली
पीर कुछ ऐसी बरसी सारी रात…

रात चली रोती-रोती
इस धरती का सिंगार कर
गानों स्वर

ले आई किरणें
कली-कली के द्वार पर
सहमी-सहमी कुछ
जगी हृदय की साध
सांझ कुछ और सयानी होकर निकली

पीर कुछ ऐसी बरसी गाते गान
भोर कुछ और सुहानी होकर निकली !

सुधियां साथ निभाएंगी !

थकी अगर रुक जाएंगी
दूरी भर-भर आएंगी
मुझको छोड़ न पाएंगी
तुम न भले ही साथ चलो
सुधियां साथ निभाएंगी !

पीड़ा ओढ़े धूप हमारे साथ में
और दुखों के हाथ हमारे हाथ में
आकर्षण दिखलाएंगी
मृगतृष्णा बन जाएंगी
और सरकती जाएंगी
तुम न भले ही साथ चलो
सुधियां साथ निभाएंगी !

मेरा उस सुर्खी के पार पड़ाव है
राहों में अनजान चढ़ाव ढलाव हैं
आहट कर-कर जाएंगी
प्रतिध्वनियों सी आएंगी
मुझको सीध बताएंगी
तुम न भले ही साथ चलो
सुधियां साथ निभाएंगी !

पाप-पुण्य की परिभाषा से दूर हैं
बंदी सुख की अभिलाषा से दूर हैं

सावन-सी बरसाएंगी
रिमझिम बन इठलाएंगी
फूलों सी महकाएंगी
तुम न भले ही साथ चलो
सुधियां साथ निभाएंगी !

पलकें अगर झुक जाएंगी !
दूरी भर-भर आएंगी !
मुझको छोड़ न पाएंगी !

फेरों बंधी हुई सुधियों को
कैसे-कितना
और बिसारें ?

आती ही जाती लहरों-सी
दूरी से सलवटें संजोती
तट की फटी दरारों में ये
फेनाया-सा तन-मन खोती
अनचाहा यह मौन निमंत्रण
कौन बहानों से इन्कारें ?
फेरों बंधी हुई सुधियों को
कैसे कितना
और बिसारें ?

रतनारे नयनों को मूंदे
पसर-पसर जाती रातों में
सिहर-सिहर टेरें भरती हैं
खोजी सपनों की बातों में
सांसों पर कामरिया का रंग
किन हाथों से पोंछ उतारें ?

फेरों बंधी हुई सुधियों को
कैसे कितना
और बिसारें ?

परदेशी जैसी अधसोई
अलसा-अलसा कर अकुलाती

सूरज देख लाजवंती-सी
उठ जाती शरमाती गाती
धूप चदरिया मिली ओढ़ने
फिर क्यों मन में इसे उतारें ?

फेरों बंधी हुई सुधियों को
कैसे गिनना
और बिसारें ?

धो लिए हमने सारे पाप
भोर ने ज्यों धोये अंधियारे !

दो पल उतरी सांझ सांवरी
साथ का भरम ले लिया हमने
सरकते दूर मिले सकेन
हाथ में हाथ दे दिया हमने
अकारण उलझी हमसे रात
नयन के पथ कर दिए कारे !

तैर जाती सोंधी सी गंध
समझ मनुहार छू दिया हमने
फैलती झिलमिल मिस चूनर
साथ का सगुन दे दिया हमने
आ पड़ी सूनेपन की बर्फ
सांस के पोर दुख गए सारे !

पूरबी वनपाखी की पहल
प्रभाती स्वर साधे हमने
हेम-सा जन्मा उसके साथ
दृष्टि क्षितिजों फेरी हमने
दूर बीजे अभिलाषी बीज
हरा सावन आया द्वारे !

रिमझिम बरखा जैसी कोई बरसे मुझ पर याद तो
मैं मन की जलन उतार दूं !
मैं धुंधले पंथ निखार दूं !
मैं सारा सफर गुजार दूं !
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो···

मेरे गीतों में सागर की अनदेखी गहराई है
मेरी रागों के सरगम में मौजों की तरुणाई है
सूनेपन से सिहरी-सिहरी बहके कोई नाव तो
मैं मलयाई पतवार दूं !
मैं हर क्षण फेनिल प्यार दूं !
मैं कोई तीर उतार दूं !
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो
गीतों से मांग सवार दूं !
मैं रागों से सिंगार दूं !
सकेतों की मनुहार दूं !

सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो
गीतों से मांग संवार दूं!
मैं रागों से सिंगार दूं!
संकेतों की मनुहार दूं!

गीतों के आखर को सुर्खी दी है तीखी धूप ने
रागों के स्वर को आकुलता दी लहरों के रूप ने
तट-सा मौनी सपना कोई चाहे मेरा साथ तो
पीड़ा-सा उसे उभार दूं!
सौ आंसू उस पर वार दूं!
आशाओं के उपहार दूं!
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो…

मेरे गीतों को ढलुआने दी झुकते आकाश ने
रागों को बढ़ना सिखलाया वनपाखी की प्यास
शूलों से बतियाते कोई आए मुझ तक पांव तो
मैं बांहों को विस्तार दूं!
मैं दो का भेद बिसार दूं!
परछाईं-सा आकार दूं!
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो…

मेरे गीतों को गदराया सावन की सौगात ने
रागों को गूंजें दे दी हैं मेघों की बारात ने

रिमझिम बरखा जैसी कोई बरसे मुझ पर याद तो
मैं मन की जलन उतार दूं !
मैं धुंधले पंथ निखार दूं !
मैं सारा सफर गुजार दूं !
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो···

मेरे गीतों में सागर की अनदेखी गहराई है
मेरी रागों के सरगम में मौजों की तरुणाई है
सूनेपन से सिहरी-सिहरी बहके कोई नाव तो
मैं मलयाई पतवार दूं !
मैं हर क्षण फेनिल प्यार दूं !
मैं कोई तीर उतार दूं !
सांसों की अंगुली थामे जो
आए क्वांरी साध तो
गीतों से मांग सवार दूं !
मैं रागों से सिंगार दूं !
सकेतों की मनुहार दूं !

तेरी मेरी जिंदगी का गीत एक है !

क्या हुआ जो रागिनी को पीर भा गई
क्या हुआ जो चांदनी को नींद आ गई
स्याह घाटियों में कोई बात खो गई
क्या हुआ जो पांखुरी पे रात रो गई
कि हर घड़ी उदास है
फिर भी एक आस है
कि लाल-लाल भोर की
कि पंछियों के शोर की
तेरे मेरे जागरण की रीत एक है !
तेरी मेरी जिंदगी का गीत एक है !

क्या हुआ कली जो अनमनी सी जी रही
क्या हुआ जो धूप सब पराग पी रही
अभी खिली अभी झुकी-झुकी-सी ढल रही
क्या हुआ हवा रुकी-रुकी-सी चल रही
कि हर कदम पे आग है
फिर भी एक राग है
कि सांझ के ढले-ढले
कि एक नीड़ के तले
तेरी-मेरी मंजिलों की सीध एक है !
तेरी-मेरी जिंदगी का गीत एक है !
आ कि तू-मैं दूरियों को साथ ले चलें
आ कि तू-मैं बंधनों को बांधकर चलें
क्या हुआ जो पंथ पर धुएं का आवरण

किन्तु कुछ भी हो कहीं रुके-दबे नहीं लगन
कि हर किसी ढलान पर
कि हर किसी चढ़ान पर
कि एक सांस एक डोर में
कि एक साथ एक छोर में
तेरी-मेरी जिंदगी की प्रीत एक है।
तेरी-मेरी जिंदगी का गीत एक है।

मेरा गांव दुलार का !

हर आकाशी पीड़ा को
संकरी पगडंडी सहलाती
हर वहकाई ईड़ा को
गीतों की सरगम समझाती
आंसू मोती बन ढलता है
ऐसा पनघट प्यार का !

हर चौपाली नीम तुझे
रसभरी निमोली दे देगा
सहमे-सहमे शैशव को
कोयल की बोली दे देगा
पुरवा पांव पखारे चलती
मेरे आंगन द्वार का !

सीमाहीन विवशता से
मेरी पहचान पुरानी है
मुस्काती अरुणाई की
हर ढलती रात कहानी है
आजा गीत सुनाऊं तुझको
तुतलाते सिंगार का !

मेरा गांव दुलार का !

ऐसी तुझे पुकार दूं !

सूनेपन की
सीमाओं को चीर कर
अपनेपन की
दुविधाओं को चीर कर
गुमसुम गीतों के आंगन को खोल दे
बंदी साधों के वातायन खोल दे
ऐसी मलय-बयार दूं !

डर मत कुंठा के
बहकाए सांस से
डर मत जग के
अहमाए परिहास से
मैले मन पर तू गंगाजल वार दे
भटके तन को सत के तीर उतार दे
मैं ऐसी पतवार दूं !

सपनों का
वरदानों से अभिषेक हो
अपनों में
अपनेपन का अतिरेक हो
बांधे गए भरम का चीर उतार दे
पल की पोथी पर हर पीर उभार दे
ऐसा स्वर सिंगार दूं !

शमशानों में
आ तू जीले जिंदगी
जंगल घाटी
आ तू हंसले जिंदगी
उठ तू मुर्दा आदर्शों को आग दे
तू अपने को अपने हाथ सुहाग दे
ऐसे पंथ उतार दूं!

ऐसी तुझे पुकार दूं!
बीता हुआ बिसार दूं!
तेरा आज बुहार दूं!
कल का चित्र उतार दूं!

तुम मिली ऐसे मिली !

अलसकर सुगबुगाई हो कली
सुन भोर की लोरी
लजाई रूप पर रीझे
भंवर की देख बरजोरी
जैसे अरुणा के अधर पर रसमसी किरणें ढलीं !
तुम मिली ऐसे मिली !

क्षितिज से चल पड़ा हो
चांद तीजों का गगन की ओर
पूनम तक पहुंचते ही
भरी रीते भुवन की कोर
झांक सावनिया घटा से चांदनी जैसे चली !
तुम मिली ऐसे मिली !

उषा की मूंगिया आभा
सदा शाश्वत नहीं होती
मिलन की साध की
हर सांझ संजोगी नहीं होती
जिंदगी हर बार सुधियों के छलावों में छली !

तुम मिली ऐसे मिली !

चरैवेति ! चरैवेति !

कितने मौसम बेमौसम वर्षों की
दहरी लांघ गए मालूम नहीं
कितने सम-बे-सम सरगम
यादों के परचम बांध गए मालूम नहीं
मुझको इतना ही मालूम कि आंखों का
पथ की दूरी से नाता है
सांसों के विश्वासों का सम-ताल
पांव को अपनी सीध चलाता है
मैं चलता हूं !
चरैवेति ! चरैवेति !

तुम सारी दूरी तक साथ नहीं दे पाओ मेरा
मुझको गिला नहीं
अथ से ही घूम-घूमे इस पथ का
कहीं पड़ाव नहीं, सिलसिला नहीं
साथ निभाने की मनुहारें
करने का मतलब मन की कमजोरी है
दो क्षण की छाया पर रीझे जाने का
मतलब तन की बरजोरी है
मैं सधता हूं !
चरैवेति ! चरैवेति !

छलनाओं पर जीवन जीने का
कोई भी अभ्यास नहीं मुझको

और अटारी छोड़ धरा पर
चलने का अभ्यास नहीं तुमको
मैं कंगूरों से उतरी ढलुआनों पर
आई गति की परिभाषा हूं
मैं सुविधा के संकेतों से
अनबन कर चलने वाली जिज्ञासा हूं
मैं जगता हूं !

चरैवेति ! चरैवेति !

□□

हरीश भादानी

—11 जून, 1933 को बीकानेर में जन्म

—नौकरी, बेकारी, अखबारी रिपोर्टर, हड़तालों आन्दोलनों के बीच स्नातकीय शिक्षा

—1960 से लेखन अनवरत

—1961 से 1973 तक 'वातायन' मासिका का सम्पादन-प्रकाशन

—अधूरे गीत, सपन की गली, हंसिनी याद की, सुलगते पिण्ड, नष्टो मोह, सुलै अलाव, पसाई घाटी, सन्नाटे के शिलाखण्ड पर, एक अकेला सूरज खेले, रोटी नाम सत है आदि काव्य संग्रह प्रकाशित

—सुधीन्द्र पुरस्कार, मीरा पुरस्कार, (राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर), प्रियदर्शिनी पुरस्कार आदि से सम्मानित।

संप्रति—स्वतन्त्र लेखन एवं जनवादी लेखक संघ से सम्बद्ध।

ISBN 81-7056-025-X